CHAPTER 22

HINDI

Doctoral Theses

01. आबिद हुसैन
छायावाद और आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि।
निर्देशक : डॉ. संजय कुमार
<u>Th 25260</u>

सारांश
(सत्यापित)

आचार्य रामचंद्र शुक्ल छायावादी युग के पहले महत्वपूर्ण आलोचक हैं। इन्होंने अपनी आलोचना में पहली बार कार्य-कारण संबंध के सहारे इस काव्यधारा की कविताओं की खुबियों और खामियों का उद्घाटन किया। इस आधार पर आलोचकों ने उन्हें 'छायावादी विरोधी' करार दिया। क्या कोई भी आलोचक अपने समकालीन काव्यांदोलनों एवं समकालीन रचनाशीलता से प्रभावित हुए, बगैर आलोचना-कर्म कर सकता है? संभवत: इसका उत्तर नहीं ही होगा। इस लिहाज से स्पष्टत: आचार्य शुक्ल भी अपने समकालीन काव्यांदोलन जिसे 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है उससे प्रभावित हुए। निस्संदेह, अधिकांश आलोचकों एवं विद्वानों ने आचार्य शुक्ल को 'छायावाद विरोधी' आलोचक के रूप में पढ़ा है। इस शोध प्रबंध का मुख्य उद्देश्य है कि आचार्य शुक्ल के संपूर्ण कृतित्व को छायावादी भावानुभूति के साथ रखकर देखा जाना चाहिए। क्या इसको नजरअंदाज करके छोड़ा जा सकता है कि महत्त्वपूर्ण छायावादी रचनाकारों की कृतियाँ एवं आचार्य शुक्ल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लगभग साथ-साथ लिखी जा रही थी। तत्कालीन जो युगचेतना और युगबोध है वह छायावादी रचनाकारों एवं आचार्य शुक्ल की एक साझी युगचेतना और युगबोध है। विचारों का यही साझापन दोनों को परस्पर जोड़ता भी है और अलगाता भी है। यह संवाद की एक प्रक्रिया है और इस प्रक्रिया का मूल्यांकन बार-बार किया जाना चाहिए। यह हिंदी साहित्य के रचनात्मक विकास के लिए जितना सुखद होगा उतना ही आचार्य शुक्ल के आलोचना-दृष्टि के मूल्यांकन के लिए भी एवं उनकी आलोचना को आत्मसात करने के लिए भी। अंत में यही कहना है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि पर छायावाद का गहरा प्रभाव है जिसके आलोक में उन्होंने हिंदी की साहित्यिक परंपरा का मूल्यांकन ही नहीं किया; बल्कि भावी विकास की दिशा खोजने का प्रयास भी किया।

विषय सूची

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि का निर्माण 2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि तथा प्रमुख छायावादी कवियों की काव्य संबंधी मान्यताएं 3. साहित्य और राष्ट्रीय आन्दोलन : आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि तथा छायावादी काव्य 4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के प्रमुख प्रिय कवि, उनका काव्य स्वभाव तथा छायावादी काव्य मानस से उनकी सन्निकटता 5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य का इतिहास तथा छायावादी काव्य चिंतन 6. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना-दृष्टि और छायावादी काव्य के मूल्यांकन की समस्याएं। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

02. कामिनी देवी
उग्र के उपन्यासों में निहित सामाजिक न्याय।
निर्देशिका : प्रो. रमा
Th 25245

सारांश
(असत्यापित)

सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने अपनी सूक्ष्मदर्शी आँखों एवं संवेदनशील हृदय से व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, जातिगत, नारीगत इत्यादि समस्याओं के विरोध में साहस, निडरता तथा उग्रता से आवाज बुलन्द करके समाज को एक नई उत्कर्षकारी चेतना से अनुप्राणित कर उससे उबरने के लिए उर्जस्वित किया है। सामाजिक न्याय मुख्यतः समष्टिवादी अवधारणा है जो मानव के नैसर्गिक विकास के लिए अपरिहार्य है। समानता, स्वतंत्रता तथा बंधुता आदि अवधारणाओं का महत्व तब है, जब कोई व्यक्ति स्वयं की स्वतंत्रता के साथ-साथ दूसरे की स्वतंत्रता का हनन न करें। प्रत्येक व्यक्ति को समान माना जाए। सांप्रदायिकता, क्षेत्रीयता, जातियता आदि विभेदकारी भावनाओं से ऊपर उठ कर समाज में सौहार्दमय वातावरण का सृजन करे। सर्वविदित है कि 'उग्र' का जन्म औपनिवेशिक शासन से त्रस्त भारत में हुआ था। जहाँ राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ-साथ सामाजिक-धार्मिक कुरीतियों से मुक्ति के लिए भी आंदोलन संचालित किए जा रहे थे। जिसका स्पष्ट निदर्शन उग्र की रचनाओं में होता है। देशी-शासक, जमींदार, कृषक, पूँजीपति, साहूकार, मजदूर, बुद्धिजीवी, मध्यम आदि वर्ग के उग्र के समकालीन समाज के प्रमुख अंग थे। उग्र का साहित्य बनाम सामाजिक यथार्थ' के अंतर्गत परिवार, प्रेम संबंध तथा विवाह, सामाजिक नैतिक मूल्यों का पतन, नारी के विविध रूप तथा शोषण प्रमुख सामाजिक समस्याएँ यथा अस्पृश्यता, अपहरण मद्यपान, अनमेल विवाह, बाल विवाह इत्यादि का यथार्थवादी वर्णन किया गया है। 'उग्र के उपन्यासों का मीमांसात्मक उग्र के सभी उपन्यासों- 'चन्द हसीनों के खुतूत', 'मनुष्यानंद', 'दिल्ली का दलाल', 'फागुन के दिन चार', 'शराबी' एवं 'सरकार तुम्हारी आँखों में' आदि उपन्यासों की चर्चा करते हुए। कथानक, चरित्र-चित्रण संवाद, देशकाल, शैली आदि तत्वों को विवेचन किया गया है। सामाजिक न्याय प्रदान करने हेतु उपन्यासों के आधार पर महिलाओं, दलितों, अल्पसंख्यकों, किन्नरों, बालसंरक्षण आदि के संदर्भ सामाजिक न्याय की स्थिति को प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1. उग्र का जीवन एवं रचनात्मकता 2. समाजिक न्याय : अर्थ, अवधारणा और स्वरूप 3. उग्र का समकालीन समाज और उसका यथार्थ 4. उग्र के उपन्यासों का मीमांसात्मक अध्ययन 5. उग्र के उपन्यासों में सामाजिक न्याय के प्रशन। 6. उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

03. गोयल (एकता)
डॉ. नगेन्द्र की आलोचना-दृष्टि।
निर्देशक : प्रो. पूरनचंद टंडन
Th 25615

सारांश
(असत्यापित)

'डॉ नगेंद्र की आलोचना - दृष्टि' में उनकी दृष्टि को केंद्र में रखकर उनकी आलोचना को व्याख्यायित करने का प्रयास किया गया है। सर्वप्रथम आलोचना का अर्थ व स्वरूप बताते हुए विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टियों पर प्रकाश डाला गया है। डॉ नगेंद्र के आलोचनात्मक साहित्य से विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टियों के उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। दृष्टि का निर्माण एकाएक नहीं होता वह एक निरंतर अध्ययनशीलता का परिणाम होता है अतः दृष्टि निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले आवश्यक तत्वों को उनके परिवेश, उनके साहित्य तथा उनके व्यक्तित्व में खोजने का प्रयत्न किया गया है। डॉ नगेंद्र के रचना-संसार में विभिन्न आलोचनात्मक दृष्टियों के दर्शन की व्यापकता पर प्रकाश डाला गया है। भक्ति काल में विशेष रूचि न होने के कारण डॉ नगेंद्र ने भक्ति काव्य पर बहुत अधिक आलोचनात्मक साहित्य नहीं लिखा परंतु सूरदास व तुलसीदास पर लिखे गए उनके आलोचनात्मक साहित्य में उनकी शुद्ध साहित्यिक दृष्टि को देखा जा सकता है। इसी दृष्टि से उन्होंने रीतिकाल की भी व्याख्या की है व रीतिकाल को एक आनंदवादी व रसपूर्ण दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। दृष्टि के भेद स्वरूप ही वे रीतिकाव्य की उपयोगिता को तर्कों द्वारा सिद्ध करते हैं व रीतिकाल को हेय समझने वाले आलोचकों को करारा जवाब देते हैं। इतना ही नहीं उन्होंने निबंध ,संस्मरण, आत्मकथा, साक्षात्कार व अन्य गद्य विधाओं पर भी व्यापक चर्चा की है, जो आलोचना के प्रति उनके दृष्टिकोण को स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त करता है।

विषय सूची

1. आलोचना-दृष्टि : अवधारणा और विकास 2. डॉ. नगेन्द्र का परिवेश और उनका व्यक्तित्व 3. डॉ. नगेन्द्र का रचना-संसार 4. डॉ. नगेन्द्र की काव्यशास्त्रीय आलोचना-दृष्टि 5. डॉ. नगेन्द्र की मध्ययुगीन काव्य संबंधी आलोचना-दृष्टि 6. विभिन्न कवियों के संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र की आलोचना-दृष्टि 7. अन्य गद्य विधाओं के संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र की आलोचना-दृष्टि। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

04. चौहान (चारू)
नाट्यशास्त्र की सैद्धांतिकी के आलोक में मोहन राकेश के नाटकों का अध्ययन।
निर्देशिका : प्रो. कुसुमलता मलिक
Th 25620

सारांश
(असत्यापित)

हिंदी नाट्य साहित्य में भरतमुनि द्वारा रचित 'नाट्यशास्त्र' में निर्मित सिद्धांत तथा लोकनाट्यों ने परंपरा और प्रयोग के धरातल पर बहुमुखी विकास के द्वार खोल दिए । फलतः 'नाट्यशास्त्र' और लोकनाट्य के विविध रूप से प्रभाव ग्रहण कर नाटककारों ने अपनी नाट्य रचनाएँ की जिसमें पारंपरिक सैद्धांतिकी के साथ-साथ नवीनता भी दृष्टव्य थी । स्वातंत्र्योतर हिंदी नाटकों में प्रयोग की स्थिति विशेष रूप से देखी जा सकती है । मोहन राकेश आधुनिक संचेतना के नाटककार हैं, लेकिन अपने अतीत को अपने पारंपरिक मूल्यों को राकेश ने कहीं भी चाहे वह उनका साहित्य हो, अथवा जीवन नकारा नहीं है । यही कारण है कि मोहन राकेश में भारतीय परंपराएं भी हैं, नवीन प्रयोगशीलता भी है और रचनाकार की असाधारण, रचनात्मक वृत्तियाँ और सर्जनशक्ति भी मौजूद

है। प्रथम अध्याय नाट्यशास्त्र पर केंद्रित है । 'नाट्यशास्त्र : परंपरा, स्वरूप और अवधारणा' नामक इस अध्याय के अंतर्गत भारतीय नाट्यशास्त्र की समृद्ध परंपरा तथा उसकी स्थापनाओं एवं नाट्यशास्त्र की आधुनिक समय में प्रासंगिकता को सूक्ष्म रूप में जानने की कोशिश की गई है । द्वितीय अध्याय 'राकेश के व्यक्तित्व और कृतित्व' पर केंद्रित है । तीसरा अध्याय 'पारंपरिक सैद्धांतिकी तथा राकेश के नाटक' है, जिसे दो उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है । चौथा अध्याय 'नाट्यशास्त्रीय सिद्धांत और आषाढ़ का एक दिन' है, जिसे पाँच उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है । पाँचवा अध्याय 'लहरों के राजहंस और नाट्यशास्त्रीय मानदंड' है, जिसे तीन उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है । छठा अध्याय 'भारतीय नाट्यसिद्धांत और आधे-अधूरे' है, जिसे दो उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है । सातवाँ अध्याय 'भारतीय नाट्य परंपरा और राकेश के बीज नाटक' है, जिसे तीन उप-अध्यायों में विभाजित किया गया है ।अंत में इस शोध कार्य से निकले निष्कर्ष को 'उपसंहार' के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

विषय सूची

1. नाट्यशास्त्र : परंपरा, स्वरूप और अवधारणा 2. राकेश का कृतित्व और व्यक्तित्व 3. पारंपरिक सैद्धांतिकी और राकेश के नाटक 4. नाट्यशास्त्रीय सिद्धांत और आषाढ़ का एक दिन 5. लहरों के राजहंस और नाट्यशास्त्रीय मानदंड 6. भारतीय नाट्य सिद्धांत और आधे-अधूरे 7. भारतीय नाट्य परंपरा और राकेश के बीज नाटक। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

05. जायसवाल (दीपक कुमार)
भारत का समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संकट और उदय प्रकाश की कहानियाँ।
निर्देशक : प्रो. निरंजन कुमार
<u>Th 25257</u>

सारांश
(असत्यापित)

मेरे शोध का विषय ' भारत का समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संकट और उदय प्रकाश की कहानियाँ' है। भूमिका और उपसंहार के अतिरिक्त शोध-प्रबंध को कुल पाँच अध्यायों में इस प्रकार विभाजित किया गया है। पहला अध्याय नवउपनिवेशवाद, भूमंडलीकरण व भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक निर्मितियाँ' है। इसके अंतर्गत तीन उप-अध्याय किये गये हैं। इसमें सभ्यता के विध्वंस की उपनिवेशवादी रणनीतियाँ, नवउपनिवेशवाद व भूमंडलीकरण का भारतीय समाज व संस्कृति पर प्रभाव, बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की सामाजिक परिस्थितियाँ व अस्मिताओं के उभार पर चर्चा की गयी है। दूसरा अध्याय 'हिंदी साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक ह्रास के चिह्न' है। जिसको तीन उप-अध्याय में विभाजित किया गया है। इसमें औपनिवेशिक सामाजिक-सांस्कृतिक संकट और हिंदी साहित्य, स्वातन्त्रयोत्तर हिंदी साहित्य: नई कहानी, साठोत्तरी में अभिव्यक्त पतनोन्मुख संस्कृति, समकालीन कथा साहित्य: भूमंडलीकरण और उत्तर आधुनिकता पर चर्चा की गयी है। तीसरा अध्याय 'उदय प्रकाश के साहित्यिक व्यक्तित्व की निर्मिति और चिंतन' है। इसको तीन उप-अध्याय में विभाजित किया है। जिसमें उदय प्रकाश का देशकाल व रचनाओं का रुझान, उदय प्रकाश की विश्वदृष्टि व रचनात्मक संवेदना, हिंदी गल्प और उदय प्रकाश पर समग्रता में चर्चा की गयी है। चौथा अध्याय 'समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य और उदय प्रकाश की कहानियाँ' है। इसमें भी तीन उप-अध्याय रखा गया है जिसमें समकालीन भारतीय समाज की समस्याएँ, सांस्कृतिक विद्रूपता व प्रतिरोध की अनुगूँजें, कथा-केंद्र में हाशिए के विमर्श की चर्चा की गयी है। पाँचवा अध्याय 'उदय प्रकाश का कथा-शिल्प और उनकी कथा

भाषा' है। इसमें उनकी कहानियों के कथा विन्यास, जादुई यथार्थवाद, घटना प्रधानता, मिथक, इतिहास, स्मृति तथा भाषा की लोकधर्मिता, प्रतीक, बिंब, प्रतीक सांकेतिकता, फैंटेसी, व्यंग्य के उपयोग के बारे में बताया गया है। शोध कार्य के लिए अधिकांश सामग्री पुस्तकों से उपयोग में लाया गया है। उसके अलावा पत्रिकाएँ, लेख, इंटनेट तथा कुछ सामग्री उदय प्रकाश के फेसबुक से उपयोग में लिया गया है जिसका सन्दर्भोचित विवरण प्रस्तुत कर दिया गया है।

विषय सूची

1. नवउपनिवेशवाद, भूमंडलीकरण व भारत की सामजिक-सांस्कृतिक निर्मितियाँ 2. हिंदी साहित्य में सामाजिक-सांस्कृतिक ह्रास के चिह्न 3. उदय प्रकाश के साहित्यिक व्यक्तित्व की मिर्मिति और चिंतन 4. समकालीन सामाजिक-सांस्कृतिक संकट और उदय प्रकाश की कहानियाँ 5. उदय प्रकाश का कथा-शिल्प। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

06. त्रिपाठी (कु. किरण)
संत तुलसी साहब और उनका काव्य।
निर्देशक : प्रो. पूरनचंद टंडन
<u>Th 25246</u>

सारांश
(असत्यापित)

हिंदी संतकाव्य परंपरा में संत तुलसी साहब और उनके काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। तुलसी साहब रीतिकाल के अंतिम संत कवि हैं जो कबीर आदि की परंपरा को लेकर चलते हैं। वे मध्यकाल के अवसान तथा आधुनिक काल के प्रारंभ की संधि अवस्था पर खड़े संत कवि हैं। रीतिकाल जैसी काव्य-प्रवृत्तियों के दौर में जनवादी काव्य की रचना करना तथा श्रृंगारिक युग में 'संतमत' की बात करना अत्यंत कठिन कार्य है। इस काल के लगभग सभी कवि प्रशस्ति और राजाश्रय के लिए काव्य रचना कर रहे थे लेकिन तुलसी साहब ऐसे कवि हैं जिन्होंने न केवल तत्कालीन पतनशील परिस्थिति में समाज के वंचित तथा उपेक्षित वर्ग को संभाला बल्कि उन्होंने कमजोर होती संतकाव्य धारा को बचाने का प्रयत्न किया है तथा उसकी दार्शनिक विवेचना प्रस्तुत की है। संत तुलसी साहब का महत्व हिंदी संत काव्य परंपरा में केवल इसलिए नहीं है कि वे इस परंपरा के अंतिम कवि हैं बल्कि इनका महत्व कमजोर और विलीन होती संतकाव्यधारा को उस समय भी बचाए रखने तथा उसकी विलुप्ति के कारणों की विशद् व्याख्या करने और संत काव्य परंपरा में आवश्यक सुधारों का प्रारंभ करने के लिए भी है। समय की मांग के अनुसार उन्होंने संतमत को सुधारने के अनेक प्रयास किए हैं। ब्रह्म को समर्पित मधुर पदों से भरी 'शब्दावली', संतमत और संत दर्शन की व्याख्या करती 'घट रामायण', सामान्य जनता के प्रश्नों और शंकाओं का समाधान करती 'रत्नसागर' तथा 'पद्मसागर' जैसी रचनाएँ तुलसी साहब को एक समाजसुधारक, महान दार्शनिक, भक्त, संत, प्रगतिशील, आधुनिक विचारों का पोषक और विभिन्न छंदों, अलंकारों तथा रसों से सज्जित काव्य रचना करने वाले सशक्त कवि के रूप में स्थापित करती हैं। तुलसी साहब ने हिंदी संत काव्य परंपरा के माध्यम से हिंदी साहित्य को समृद्ध करने का जो सराहनीय कार्य किया है, हिंदी साहित्य उनका सदैव ऋणी रहेगा।

विषय सूची

1. संत की अवधारणा और स्वरूप 2. संत तुलसी साहब : जीवन और रचना-कर्म 3. संत तुलसी साहब और उनका दर्शन 4. संत तुलसी साहब की सामाजिक चेतना 5 संत तुलसी साहब की काव्य-भाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

07. ध्रव कमार
पारिस्थितिकी विमर्श और समकालीन हिंदी उपन्यास।।
निर्देशक : प्रो. निरंजन कुमार
Th 25247

सारांश
(असत्यापित)

मानव का प्रकृति के साथ सदैव से अटूट संबंध रहा है। मानव अस्तित्व के पहले इस सृष्टि में यदि किसी का अस्तित्व रहा है तो वह है प्रकृति। पर आधुनिक विकास की होड़ और दौड़ में मानव कैसे अपनी प्रकृति और पारिस्थितिकी से दूर होता चला जा रहा है और उसे नष्ट करता जा रहा है यही शोध का विचारणीय बिंदु है। समकालीन हिंदी उपन्यासों में इसकी विशद अभिव्यक्ति हुई है। प्रथम अध्याय 'पारिस्थितिकीः अवधारणा एवं अध्ययन क्षेत्र' रखा गया है। इसके पुनः चार उप-अध्याय किए गए हैं। इसमें पारिस्थितिकी की अवधारणा, इसका उद्भव और विकास, पर्यावरण और पारिस्थितिकी में अंतर, प्राकृतिक संसाधनों के स्वरूप एवं प्रकार और पर्यावरण की चर्चा की गई है। दूसरा अध्याय 'साहित्य और पारिस्थितिकी विमर्श' है जिसके अंतर्गत 'साहित्य और पारिस्थितिकी के अंतःसंबंध' और पारिस्थितिकी विमर्श के दर्शनों और सिद्धांतों जैसे, 'गहन पारिस्थितिकी', 'सामाजिक पारिस्थितिकी', 'पारिस्थितिक मार्क्सवाद', 'पारिस्थितिक गांधीवाद' और 'पारिस्थितिक स्त्रीवाद' आदि की चर्चा की गई है। तीसरा अध्याय 'समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पारिस्थितिकी, समाज और संस्कृति' है जिसमें उपन्यासों में 'पारिस्थितिकी एवं सहज मानव जीवन', 'पारिस्थितिकी, मानव समाज एवं संस्कृति' और 'पारिस्थितिकी एवं स्त्री के स्थलीय, पहाड़ी एवं तटीय जीवन' का अध्ययन किया गया है। चौथा अध्याय समकालीन हिंदी उपन्यास और पारिस्थितिकी क्षरण है। इसमें समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त 'भौतिक एवं जैविक पारिस्थितिकी क्षरण' और उसके व्यक्तिगत जीवन, समाज और संस्कृति पर पड़े प्रभाव का अध्ययन किया गया है। पाँचवा अध्याय समकालीन हिंदी उपन्यास में व्यक्त जनाक्रोश और आंदोलन है। इसमें पारिस्थितिकी क्षरण के प्रमुख कारणों, आमजन में पारिस्थितिकी संरक्षण के प्रति चेतना और पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए आंदोलनों का अध्ययन किया गया है। इस प्रकार समकालीन हिंदी उपन्यासों को केंद्र में रखकर पारिस्थितिकी विमर्श का समग्रता में विवेचन विश्लेषण किया गया है।

विषय सूची

1. पारिस्थितिकी : अवधारणा एवं अध्ययन क्षेत्र 2. साहित्य और पारिस्थितिकी विमर्श 3. समकालीन हिंदी उपन्यासों में अभिव्यक्त पारिस्थितिकी, समाज और संस्कृति 4. समकालीन हिंदी उपन्यास और पारिस्थितिकी क्षरण 5. समकालीन हिंदी उपन्यास में व्यक्त जनाक्रोश और आंदोलन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

08. नवीन कुमार
सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध का सामाजिक परिवेश और कवि गंग का काव्य।
निर्देशक : प्रो. पूरनचंद टंडन
Th 25614

सारांश
(असत्यापित)

हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य आलोचक एवं साहित्येतिहासकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य व समाज के संबंध को दामन-चोली के समान मानते हुए साहित्य को समाज का दर्पण कहते हैं, उनकी यह चिंतना कोरी कल्पना मात्र नहीं है अपितु अनुभूतिजन्य है । प्रस्तुत शोध विषय 'सोलहवीं सदी के उत्तरार्द्ध का सामाजिक परिवेश और कवि गंग का काव्य' साहित्य और समाज के संबंध की पड़ताल का ही एक दस्तावेज है जिसमें अकबरी दरबार के कवि गंग के काव्य में व्याप्त विविधताओं एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्यों पर प्रकाश डाला गया है । इस शोध कार्य का उद्देश्य रीतिकालीन परिवेश को केवल नायिका-नायक की शृंगारिकता व मांसलता के काव्य की धारा समझने की प्रवृत्ति को तोड़ना भी है क्योंकि कवि गंग रीतिकालीन दरबारी कवि होते हुए भी नीति काव्य में रहीम, वीर काव्य में भूषण और भक्ति काव्य में तुलसीदास के समान नजर आते हैं, जो रीतिकालीन कवियों को हेय दृष्टि से देखने वालों पर प्रश्न चिह्न खड़ा करता है । इस शोध कार्य में सर्वप्रथम सोलहवीं सदी के समय पर चर्चा की गई है, उसके पश्चात कवि गंग के जन्म, मृत्यु, नामकरण, काल-निर्धारण पर चर्चा की गई है । काल और कवि गंग के परिचय के उपरांत उनके काव्य में व्याप्त विविधताओं, उनके काव्य में व्याप्त सौन्दर्य-चेतना, और उनके भाषा-वैविध्य का विश्लेषण किया गया है । यह शोध-कार्य शोधार्थियों एवं हिन्दी काव्य के पाठक वर्ग के लिए कई नए आयाम खोलेगा जिससे कवि गंग की काव्य-विविधता और काव्य-कुशलता से सुधिजन अवगत हो सकेंगे ।

विषय सूची

1. सोलहवीं सदी का उत्तरार्द्ध और उसका परिवेश 2. कवि गंग का जीवनवृत्त, व्यक्तित्व एवं काव्य–सृजन 3. कवि गंग के काव्य में शृंगार, नीति एवं धर्म 4. कवि गंग के काव्य में ऐतिहासिकता और विविधता 5. कवि गंग के काव्य में तत्कालीन समाज की झलक 6. कवि गंग के काव्य में भाषा और शिल्प। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

09. पटेल (मनीष)
भक्तिकालीन सामाजिक–वैचारिक द्वन्द्व और तुलसी का काव्य।
निर्देशिका : डॉ. मंजु मुकुल कांबले
Th 25248

सारांश
(असत्यापित)

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में भक्तिकालीन सामाजिक-वैचारिक द्वन्द्व का अध्ययन तुलसी काव्य के आधार पर पाँच अध्यायों में विभाजित कर किया गया है। तुलसी जहाँ एक ओर भक्तिकाल में मौजूद सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक स्तर पर द्वन्द्व को वे अपनी लेखन कला, वैचारिक प्रतिबद्धता और शास्त्रीयता के साथ प्रभावित करने की कोशिश करते हैं। वहीं दूसरी ओर, सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर नए वर्गों के उभार ने मध्यकालीन साहित्य और समाज को भी प्रभावित किया, जहाँ अनेक अलग-अलग मत के लोग

एक साथ अपनी बातों को आम जनमानस के सामने प्रस्तुत करते दिखाई पड़ते हैं। इस अध्ययन के द्वारा यह निश्चित होता है कि, तुलसी शास्त्र से लोक की यात्रा करते हैं। उनका अन्तिम लक्ष्य लोक ही है जहाँ पहुँचकर वे बिम्बों और प्रतीकों के द्वारा एक चित्र निर्मित करते हैं। तुलसी के काव्य और तत्कालीन परिस्थिति का गहरा अन्तर्सम्बन्ध है। उनके समाज का मूल आधार वर्ण व्यवस्था है। वे वर्णाश्रम व्यवस्था को पुनर्जीवित करते हैं। ऐसी व्यवस्था तत्कालीन समाज का दस्तूर थी। तुलसी वर्ण व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन नहीं चाहते थे बल्कि, उसमें कुछ बदलाव चाहते हैं। वे एक परम्परावादी कवि हैं। लेकिन इतना अवश्य है कि तुलसी लोक मान्यताओं के पक्ष में ज्यादा खडे जान पड़ते हैं जहाँ स्त्रियों का स्थान निम्नतर है। उनके काव्य में वैचारिक पक्षधरता को दुरूस्त करने की एक लौ तो है लेकिन वे अपनी परम्परा और लोक का मोह नही छोड़ पाते हैं। तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् इतना कहना पर्याप्त है कि, उनका मुख्य उद्देश्य परम्परा को बचाना है। वह मुख्यतः एक सुव्यवस्थित और स्थायी समाज में मानव को भक्ति के माध्यम से मोक्ष का रास्ता दिखाने का काम करते हैं। जहाँ वे अन्तर्द्वन्द्व से भरे भक्ति-भावना से सराबोर और परम्परा को बचाने के लिए अपने काव्य में जद्दोजहद करते जान पड़ते हैं।

विषय सूची

1. भक्तिकाल : एक परिचय 2. भक्तिकालीन सामाजिक-वैचारिक द्वन्द्व 3. तुलसी का काव्य : एक परिचय 4. सामाजिक-वैचारिक द्वन्द्व के समानान्तर तुलसी का काव्य 5. तुलसी की सामाजिक-वैचारिक पक्षधरता। उपसंहार। ग्रंथ सूची।

10. बिपिन प्रसाद

उन्नीसवीं सदी की आरम्भिक हिन्दी पाठ्य पुस्तकें और फोर्ट विलियम कॉलेज (संदर्भ : लल्लूलाल एवं सदल मिश्र)।

निर्देशक : प्रो. चन्दन कुमार

Th 25617

सारांश
(असत्यापित)

वेलेजली ने फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना 1800 ई. में कलकत्ता (कोलकाता) में की थी। यह कॉलेज 1854 ई. में बंद कर दिया गया। इस कॉलेज की स्थापना अंग्रेजी सिविल सेवकों एवं कर्मचारियों को भारतीय भाषाओं तथा संस्कृति का ज्ञान कराने के उद्देश्य से किया गया था। इस कॉलेज में भारतीय भाषाओं के ज्ञान के लिए देश के विभिन्न जगहों से योग्य अध्यापक बुलाये गये। इसका लाभ यह हुआ कि भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञों की मेधा की पहचान हुई। कॉलेज में विभिन्न भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञों के आने से भारतीय भाषाओं के प्रचार-प्रसार को बढ़ावा मिला। इसी में खड़ी बोली हिन्दी भी प्रमुख थी। खड़ी बोली हिन्दी को सरकारी संरक्षण यहीं से प्राप्त हुआ। सरकारी संरक्षण मिलने से खड़ी बोली हिन्दी सुदृढ़ हुई। जिससे हिंदी का व्याकरण, शब्दकोश, साहित्यिक अनुवाद इत्यादि का रूप हमारे सामने आया। कॉलेज में हिन्दुस्तानी विभाग का अध्यक्ष डॉ. बौर्थविक जॉन गिलक्राइस्ट को बनाया गया। गिलक्राइस्ट का हिन्दुस्तानी से आशय हिन्दवी + अरबी + फारसी से था। गिलक्राइस्ट हिन्दी + उर्दू को हिन्दुस्तानी मानते थे। इस प्रकार गिलक्राइस्ट उर्दू भाषा एवं रोमन लिपि के पक्षधर थे। यही कारण है कि गिलक्राइस्ट ने उर्दू की अपेक्षा हिन्दी को कम बढ़ावा दिया। फिर भी खड़ी बोली हिन्दी के आरम्भिक विकास में गिलक्राइस्ट का महत्वपूर्ण योगदान है। गिलक्राइस्ट के योगदान के कारण ही कॉलेज में

खड़ी बोली हिन्दी का अध्यापन प्रारम्भ हुआ। कॉलेज से खड़ी बोली हिन्दी की पाठ्य-पुस्तकें तैयार की गईं। गिलक्राइस्ट के द्वारा ही कॉलेज में लल्लूलाल एवं सदल मिश्र जैसे विद्वानों की नियुक्ति खड़ी बोली हिन्दी 'भाषा मुंशी' के पद पर हुई। गिलक्राइस्ट के आग्रह पर ही दोनों लेखकों ने अनेक भाषाओं के ग्रन्थों को खड़ी बोली हिन्दी में अनूदित किया। ये अनूदित पुस्तकें फोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती थी। इसके फलस्वरूप खड़ी बोली हिन्दी के प्रचार-प्रसार में वृद्धि हुई।

विषय सूची

1. उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारतीय शासन 2. फोर्ट विलियम कॉलेज और हिन्दी 3. आरम्भिक हिन्दी पाठ्य-पुस्तकों की स्थिति 4. लल्लूलाल : हिन्दी भाषा और साहित्य 5. सदल मिश्र : हिन्दी भाषा और साहित्य। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट।

11. भारती
भक्तिकालीन हिंदी काव्य में अभिव्यक्ति वैयक्तिक स्वर। ।
निर्देशक : प्रो. मोहन
<u>Th 25249</u>

सारांश
(असत्यापित)

भक्तिकालीन हिंदी काव्य में भक्ति की प्रधानता होने के कारण प्रायः इस काल को आत्म प्रकाशन और कवि-व्यक्तित्त्व की दृष्टि से शून्य मान लिया जाता है। क्या भक्तिकालीन हिंदी काव्य में रचनाकार का जीवनसंघर्ष मौजूद नहीं है, जिसमें उनका एक वैयक्तिक रूप दिखाई देता है? जिसमें रचनाकार ने अपने आत्मकथात्मक स्वर व्यक्त किए हैं? क्या भक्तिकालीन हिंदी कविता का रचनाकार के जीवन सन्दर्भों से कोई नाता है या नहीं। वैयक्तिक स्वर के परिप्रेक्ष्य में भक्तिकाल का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि इस काल के रचनाकारों ने भी अपने जीवन जगत से जुड़े प्रश्नों को काव्य में स्थान दिया है। भक्तिकाल में वैयक्तिक स्वर कहीं विनय के पदों में सामने आए हैं तो कहीं अपनी रचनाओं में पात्रों और प्रसंगों के बीच उनके वैयक्तिक स्वर मुखरित हुए हैं तो कुछ रचनाकारों ने प्रत्यक्ष रूप से अपने काव्य में वैयक्तिक स्वरों का प्रकाशन किया है। अतः वैयक्तिक स्वर के परिप्रेक्ष्य में भक्तिकालीन हिंदी काव्य की नई अर्थ संभावनाओं को तलाशना इस शोध कार्य का महत्व कहा जा सकता है । इसमें भक्तिकालीन हिंदी काव्य में अभिव्यक्त वैयक्तिक स्वरों की पहचान करने का प्रयत्न किया गया है। भक्तिकाल में जिन कवियों और कवयित्रियों की रचनाओं में वैयक्तिक स्वर मिलते हैं, उनका विश्लेषण करते हुए इन स्वरों के स्वरूप को बताया गया है। भक्तिकालीन हिंदी काव्य में अभिव्यक्त वैयक्तिक स्वरों के स्वरूप का इनकी अंतर्वस्तु के आधार पर अध्ययन व विश्लेषण किया गया है। वैयक्तिक स्वर की अभिव्यक्ति का भक्तिकालीन काव्यभाषा पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट किया गया है। वस्तुतः वैयक्तिक स्वर की अभिव्यक्ति में रचनाकार की रचना में से उन अंशों को ढूंढने का प्रयास किया गया है जिसमें रचनाकार का निजी जीवन और उनसे जुड़े सरोकार व्यक्त हुए हैं।

विषय सूची

1. वैयक्तिक स्वर : परिचय और सैद्धांतिक स्वरूप 2. भक्तिकालीन हिंदी काव्य और वैयक्तिक स्वर 3. भक्तिकालीन निर्गुण काव्य में अभिव्यक्त वैयक्तिक स्वर 4. भक्तिकालीन सगुण काव्य में अभिव्यक्त

वैयक्तिक स्वर 5. वैयक्तिक स्वर की अभिव्यक्ति का भक्तिकालीन काव्यभाषा पर प्रभाव। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

12. मनीष

फणीश्वरनाथ रेणु के साहित्य में भूमि, जाति एवं राजनीति का अन्तःसंबंध।

निर्देशिका : डॉ. रमा

Th 25250

सारांश

(असत्यापित)

फणीश्वरनाथ रेणु को समग्रता में समझना इस शोध का प्राथमिक उद्देश्य है। यही कारण है कि फणीश्वरनाथ रेणु के समस्त साहित्य को शोध का आधार बनाया गया है। यह एक आम धारणा है कि फणीश्वरनाथ रेणु मूलतः और अंततः एक सफल आँचलिक कथाकार हैं। यह शोध इस प्रचलित धारणा की सीमाओं को भी रेखांकित करता है। फणीश्वरनाथ रेणु न तो केवल आँचलिक हैं और न ही केवल कथाकार, बल्कि वह तो साहित्य की कई कथेतर गद्य-विधाओं को स्थापित करने वाले मुकम्मल साहित्यकार हैं। मसलन 'ऋणजल-धनजल' हिन्दी साहित्य में रिपोर्ताज नामक विधा को स्थापित करने वाली रचना है। इसके अतिरिक्त फणीश्वरनाथ रेणु के समस्त साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्वर की तलाश भी इस शोध का अन्यतम उद्देश्य है। शोधार्थी की यह मान्यता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत में भूमि-समस्या तथा उससे संलग्न जातिगत जटिलता और राजनीतिक विद्रूप को सामने लाना रेणु के साहित्य की केन्द्रीय अभिव्यक्ति है। फणीश्वरनाथ रेणु की इसी अभिव्यक्ति को उनके साहित्य की सर्वप्रमुख अभिव्यक्ति के रूप में मान्यता दिलवाना शोध का प्राथमिक लक्ष्य है। फणीश्वरनाथ रेणु का साहित्य स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्थापित भूमि, जाति एवं राजनीति के परस्पर गठजोड़ को आलोकित करता है। रेणु का साहित्य अलग-अलग भूमि, जाति एवं राजनीति के विवेचन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। रेणु ने तो सीधे-सीधे बिहार विधानसभा की कार्यवाहियों पर भी 'टिप्पणियाँ' लिखी हैं। जाति को आधार बनाकर 'पंचलाइट' जैसी कहानी लिखी है। भूमि-समस्या को केन्द्र में रखकर 'परती-परिकथा' जैसा उपन्यास लिखा। दलगत राजनीति को संबोधित 'पार्टी का भूत' जैसी कहानी की रचना की। लेकिन फणीश्वरनाथ रेणु अपने समस्त साहित्य में भूमि, जाति एवं राजनीति के परस्पर गठजोड़ की भी आलोचनात्मक विवेचना प्रस्तुत करते हैं।

विषय सूची

1. फणीश्वरनाथ रेणु के जीवन और साहित्य का अन्तःसंबंध 2. बिहार के विशेष संदर्भ में भारत की भूमि-समस्या तथा भूमि-सुधार 3. फणीश्वरनाथ रेणु के रचना-काल में बिहार के सामज की बदलती हुई संरचना तथा अखिल भारतीय परिदृश्य 4. फणीश्वरनाथ रेणु के विवेचनात्मक गद्य में सामाजिक संरचना संबंधी चिन्तन 5. फणीश्वरनाथ रेणु के कथा-साहित्य में भूमि, जीति एवं राजनीति का स्वरूप तथा अन्तःसंबंध 6. फणीश्वरनाथ रेणु के रिपोर्ताज में भूमि-समस्या तथा समाज की यातना का स्वरूप। का उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

13. मिश्र (सुनील कुमार)

कुँवर नारायण के काव्य में भाव-बोध और भाषा के स्वरूप का अध्ययन।

निर्देशक : प्रो. गोपेश्वर सिंह

Th 25251

सारांश
(असत्यापित)

आधी सदी से भी अधिक अपने रचनात्मक-जीवन के सफर में कुँवर नारायण ने कई चढ़ाव-उतराव और कई बदलाव देखें। कई काव्य-आंदोलनों के बीच से गुजरे, किसी-किसी से प्रेरित-प्रभावित हुए लेकिन अपनी लय नहीं छोड़ी। कुँवर नारायण के रचनात्मक लेखन की शुरुआत 'नई कविता' से हुई। 'नई कविता' से लेकर 'समकालीन हिन्दी कविता' तक वह सक्रिय रहे। मुक्तिबोध के लिए कविता यदि 'सभ्यता-समीक्षा' है तो कुँवर नारायण के लिए रचनात्मक कर्म संस्कृति-समीक्षा है। कुँवर नारायण गहरे अर्थों में संस्कृति कर्मी हैं। कुँवर नारायण के लिए कविता मूलतः एक सांस्कृतिक कर्म है। इस सांस्कृतिक कर्म का विकास सीधी रेखा में नहीं होता है बल्कि कई दिशाओं में होता हैं या कहें तो यह विकास दिक्काल मुक्त है। कुँवर नारायण बहुलता बोध के कवि हैं। बहुवचन में चीजों को देखने की वकालत उनकी कविता करती है। उनकी कविता में कई दृष्टियों की पारस्परिकता है। व्यक्ति की स्वायत्तता के वह पक्षधर हैं, पर उस स्वायत्तता के निर्माण में बहुतों का योग है। 'स्व' में 'पर' की उपस्थिति किसी अवरोध की तरह नहीं बल्कि पूरक की तरह होती है, कुँवर नारायण की कविता इस पर बार-बार इसरार करती है। यह कविता खुद को इतनी विस्तृत कर लेती है, जिसमें सब समा जाते हैं। प्रतिरोध की संस्कृति समकालीन हिंदी कविता का केन्द्रीय स्वर है। मनुष्य के जीवन पर आज के समय में चौतरफा हमले हो रहे हैं। कविता पीड़ित, उपेक्षित, दमित, वर्ग के साथ खड़ा होकर लड़ाई लड़ रही है। कुँवर नारायण अपनी कविताओं में विशेषकर काव्य-भाषा में अपना ही विपर्यय रचते हैं। आत्मजयी', 'वाजश्रवा के बहाने' का कवि 'लखनऊ' और इन जैसी अनेक कविताएँ लिखता है। काव्य-भाषा का एक छोर संस्कृतनिष्ठ हिन्दी दूसरा छोर उर्दू भाषा की संस्कृति। कुँवर नारायण अवधी संस्कृति को भी अपनी कविताओं में जगह देते हैं। वह लोक-संस्कृति के परंपरागत फार्म की 'पैरोडी' व्यंग्य के लिए करते हैं।

विषय सूची

1. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता और कुँवर नारायण 2. कुँवर नारायण का काव्य-विकास 3. कुँवर नारायण के काव्य में भाव-बोध का स्वरूप 4. कुँवर नारायण की काव्य भाषा का स्वरूप 5. समकालीन हिन्दी कविता और कुँवर नारायण। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

14. मिश्रा (निधि)
उत्तर छायावादी हिंदी कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन।
निर्देशक : प्रो. पूरनचंद टंडन
Th 25523

सारांश
(असत्यापित)

हिंदी साहित्य में उत्तर छायावादी काव्यधारा एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। छायावाद का परवर्ती रूप ही हिंदी साहित्य में उत्तर छायावाद के नाम से जाना जाता है। उत्तर छायावादी कविता की महत्वपूर्ण विशेषता राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना से संबंधित काव्य के निर्माण में रही है। इस काव्य धारा के प्रमुख कवि माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्रा कुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के स्वर प्रमुखता से दिखाई देते हैं। मैंने इन कवियों के काव्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को आधार बनाकर ही शोध कार्य किया है। इस शोध प्रबन्ध को मैंने मुख्य रूप से 5 अध्यायों में विभक्त किया है। जिसमें पहला

अध्याय 'उत्तर छायावाद की पृष्ठभूमि व अवधारणा' है। इस अध्याय को तीन उप-अध्यायों बांटा है, जो क्रमशः 'छायावाद का विकासक्रम', 'छायावाद के पर्यवसान की प्रक्रिया' तथा 'उत्तर छायावादी काव्य' है। इस शोध-प्रबंध का दूसरा अध्याय 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना: अवधारणा एवं स्वरूप' है। इस अध्याय को 3 उप-अध्याय में बांटा है।जो क्रमशः 'भारतेंदु युगीन काव्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के आयाम', 'द्विवेदी युगीन काव्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के आयाम' तथा 'छायावाद युगीन काव्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के आयाम'है। चौथा अध्याय 'उत्तर छायावादी कविता में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार' है। इस अध्याय को चार उप-अध्याय में बांटा है। पहला 'माखनलाल चतुर्वेदी की कविताओं में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना' है। दूसरा 'बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की कविताओं में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना' है। तीसरा 'सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना' तथा चौथा उप-अध्याय 'रामधारी सिंह 'दिनकर 'की कविताओं में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना' है। शोध- प्रबंध का अंतिम पांचवा अध्याय 'उत्तर छायावादी काव्यधारा की प्रवृतियां' है। इस अध्याय को 2 उप-अध्याय में विभक्त किया है,पहला उप-अध्याय 'उत्तर छायावादी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा की प्रवृतियां' है व दूसरा उप-अध्याय 'उत्तर छायावादी कविता वैयक्तिक गीतकाव्यधारा की प्रवृतियां' है।

विषय सूची

1. उत्तर छायावाद की पृष्ठभूमि व अवधारणा 2. राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना : अवधारणा एवं स्वरूप 3. आधुनिक हिंदी कविता में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना का विकास उत्तर छायावादी कविता में राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना के रचनाकार 5. उत्तर छायावादी काव्यधारा की प्रवृत्तियाँ। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

15. मिश्रा (नेहा)
अरुण कमल के काव्य में उत्तर आधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति का स्वरूप ।
निर्देशक : प्रो. पूरनचंद टंडन
<u>Th 25252</u>

सारांश
(सत्यापित)

अरुण कमल समकालीन हिंदी कविता के हस्ताक्षर हैं और कवि -दृष्टि में समकालीनता का अर्थ है पूंजी, बाजार, स्वार्थ और अमानवीकरण के विरूद्ध जाग्रत होना।जहाँ तक अरुण कमल की कविताई का प्रश्न है तो कवि-दृष्टि अपनी काव्य-यात्रा के दौरान प्रतिपल परिवर्तित और घटित होती स्थितियों का परीक्षण करती है, कुछ और घटित होने का संकेत भी छोड़ती है। 'बदल रहा है संसार' व एक ही दिन में दुनिया के पुराने पड़ जाने के बोध के साथ भूमंडलीय दुष्प्रभावों को 'क्षति' के रूप में देखने की पूरी कोशिश इन कविताओं में विद्यमान है। वैश्विक पूंजी के दौर में हमारे परसेप्शन और बोध में किस तरह के दाव पड़ रहे हैं, इसे समझने-बूझने की एक नयी भूमिका अरुण कमल की कविताओं में देखी जा सकती है। कविताएँ मानव-स्वभाव के संदर्भ में 'एब्सोल्यूटनेस' को नकारती हुई उसे परिस्थिति विशेष मेंरखते हुए उसे नये रूप में परिभाषित करती हैं।रचना-प्रक्रिया में पूर्ववर्ती काव्य संसार की अन्तर्यात्रा के स्वीकार्य भाव के साथ अपने होने का न्यूनतम स्वीकार्य बोध भी निरंतर विद्यमान है। स्थानीयता अरुण कमल की काव्य भाषा का महत्त्वपूर्ण तत्व है। अरुण कमल की कविताओं में मिथक, इतिहास, भूगोल, मीडिया आदि के सर्जनात्मक अन्तर्पाठ निर्मित हुए हैं।भाषिक व्यवहार के रूप में कहीं-कहीं सायास व अनायास ढंग से की गयी शब्दक्रीड़ा कविताओं के अर्थ-संदर्भ को विस्तार देते हैं। अरुण कमल की

कविताओं में पुरानी तमाम कविताओं की प्रतिध्वनियों को सुना जा सकता है, साथ ही कविताओं में पुरानी कविताओं, लोकगीतों की सार्थक पैरोडी भी देखी जा सकती है।कविताओं में अन्य विधाओं की आवाजाही ऐसी है कि हम इन्हें कथा रिपोर्ट आदि के फॉर्म में पढ़ सकते हैं। लैंगिक विश्लेषण की दृष्टि से अरुण कमल की काव्यभाषा में कोई नया रूपक नहीं दिखता। पुराने रूपकों के सहारे पुरुष स्त्री साहचर्य के बीच ही स्त्री अपनी मुक्ति का मार्ग तलाशते दिखती है।

विषय सूची

1. उत्तर आधुनिकता का उदय : अर्थ और स्वरूप 2. उत्तर आधुनिक भावबोध और समकालीन हिंदी कविता 3. अरुण कमल की कविता और समकाल 4. अरुण कमल की कविताओं में अभव्यक्त उत्तर आधुनिक भावबोध 5. अरुण कमल की काव्य भाषा का उत्तर आधुनिक परिदृश्य। उपसंहार। परिशिष्ट संदर्भ ग्रंथ सूची।

16. मीणा (रामचंद्र)
यशपाल के उपन्यासों में समाज एवं क्रांति की अवधारणा।
निर्देशक : डॉ. प्रेम सिंह
Th 25522

सारांश
(असत्यापित)

यशपाल हिंदी उपन्यास की परंपरा में राजनैतिक चेतना से संपन्न यथार्थवादी धारा के प्रमुख लेखकों में हैं। उनकी यथार्थवादी रचना-दृष्टि और राजनैतिक-दृष्टि मुख्यत: मार्क्सवादी विचारधारा से सम्बद्ध है। इसीलिए उनके उपन्यासों/कथा-साहित्य में सामाजिक और मानवीय संबंधों का विशिष्ट रूप में चित्रण मिलता है। यशपाल के यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद की कोटि में रखा जाता है। हालांकि मार्क्सवादी आलोचक रामविलास शर्मा उन्हें यथार्थवादी धारा का रचनाकार स्वीकार नहीं करते । अन्य कई आलोचक/लेखक यशपाल के विचारधारा प्रेरित यथार्थ चित्रण को सीमाबद्ध मानते हैं जो उनकी कृतियों को क्लासिक की कोटि में नहीं आने देती । लेकिन यशपाल आलोचकीय विवादों के बावजूद एक महत्वपूर्ण उपन्यासकार के रूप में स्वीकृत रहे हैं। मेरा शोध-विषय 'यशपाल के उपन्यासों में समाज एवं क्रांति की अवधारणा' है। यशपाल मानते हैं कि समाज में सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं साहित्यिक मूल्य एवं मनुष्य का सामाजिक एवं राजनैतिक स्थान उसकी आर्थिक भूमिका के अनुरूप ही निर्मित होता है। उनका यह मानना प्रतिबद्ध साम्यवादी वैचारिकी के कारण है। यशपाल के उपन्यासों का केन्द्रीय मुद्दा उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध एक शोषण मुक्त समतावादी समाज की रचना का ही है। उनके उपन्यासों के नायक पूंजीवादी व्यवस्था से उपजी उपनिवेशीवादी विकृतियों को प्रस्तुत करते और सर्वहारा वर्ग के हित के लिए संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध में साहित्य, समाज और राजनीति के त्रि-आयामी स्वरूप से यशपाल के तद्युगीन परिवेश और उसकी वैचारिकी को प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, प्रस्तुत शोध-प्रबंध 'यशपाल के उपन्यासों में समाज एवं क्रांति की अवधारणा' में यशपाल के मार्फ़त 'समाज' और 'क्रांति' के बहुआयामी परिप्रेक्ष्य को उद्धाटित करने का प्रयास रहा है।

विषय सूची

1. समाज और क्रांति : अर्थ और अवधारणा 2. यशपाल की विचारधारा 3. यशपाल के उपन्यासों में चित्रित सामाजिक संरचना और संघर्ष 4. यशपाल के उपन्यासों में चित्रित क्रांति चेतना 5. यशपाल के उपन्यासों का शिल्प और भाषा। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

17. मीना (हिना)
हिन्दी समानांतर सिनेमा में स्त्री प्रतिरोध ।
निर्देशिका : डॉ. मंजु मुकुल काम्बले
Th 25253

सारांश
(असत्यापित)

हिंदी सिनेमा ने स्त्री को पुरुष की अनुगामनी और उसकी कृपा पात्र दिखाया है। इस बेचारगी से निजात पा कर ही हिंदी सिनेमा की स्त्री मजबूत हो सकती है। पितृसत्तात्मक सोच ने स्त्री का अनुकूलन इस प्रकार किया है कि वह पुरुषों द्वारा निर्धारित मूल्यों को ही आत्मसात कर लेती है। समानांतर सिनेमा की स्त्री पितृसत्तात्मक सोच की पहचान कर सकती है। यहाँ स्त्री इस दृष्टिकोण को आत्मसात करने से इंकार कर उसका प्रतिरोध करती है। यह प्रतिरोध किसी प्रकार का प्रतिशोध न होकर शोषण का प्रतिकार मात्र है। समानांतर सिनेमा स्त्री अस्मिता के साथ उसकी 'इच्छा' का भी प्रश्न खड़ा करता है। आमतौर पर समाज जहाँ स्त्री की इच्छा को उसके दैनिक जीवन की जरूरतों से जोड़कर देखता है वहीं समानांतर सिनेमा की स्त्री अपनी 'इच्छा' को अपनी स्वतंत्रता से जोड़ती है। स्त्री की दासता का मुख्य कारण ही उसकी अन्य व्यक्ति के ऊपर निर्भरता है। समानांतर सिनेमा की स्त्री में आत्मनिर्भरता नजर आती है। समानांतर सिनेमा ने स्त्री को पारंपरिक भूमिका से आगे बढ़कर व्यक्ति रूप में देखने का प्रयास किया। स्त्री-पुरुष संबंधों की प्रमाणिकता या उसका यथार्थपरक चित्रण समानांतर सिनेमा में स्त्री दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। स्त्री-पुरुष संबंधों को यहाँ यौन संबंधों की स्वतंत्रता तक ही सीमित करने का प्रयास नहीं है। स्त्री यौनिकता की सहज अभिव्यक्ति भी समानांतर सिनेमा की अपनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। समानांतर सिनेमा स्त्री सौंदर्य के पारंपरिक प्रतिमानों को चुनौती देता हुआ इसके यथार्थपरक पक्ष को सामने लाता है। समानांतर सिनेमा में स्त्री को केन्द्रिय भूमिका में दिखाया गया है। पारंपरिक 'नायक' की धारणा के बरक्स स्त्री यहाँ मुख्य भूमिका में नजर आती है। हजारों वर्षों की परंपरा के समक्ष समर्पण न कर उसके सामने खड़े होना भी उसके प्रतिरोध, उसकी दृढ़ता, उसकी अस्मिता की पहचान का परिचायक है।

विषय सूची

1. समानांतर सिनेमा 2. स्त्री-विमर्श और स्त्री प्रतिरोध का अंतर्संबंध 3. हिंदी सिनेमा के विविध दौर में स्त्री की उपस्थिति 4. समानांतर सिनेमा में स्त्री केन्द्रित फिल्मों में भाषा का बदलता स्वरूप 5. समानांतर सिनेमा के महत्त्वपूर्ण निर्देशको की स्त्री केन्द्रित फिल्मों में स्त्री-स्वर। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

18. यादव (दिनेश कुमार)
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में प्रयुक्त देशज शब्दावली का समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन (नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलाचन के संदर्भ में)।
निर्देशक : डॉ. राकेश कुमार
Th 25254

सारांश
(असत्यापित)

भाषा एक सामाजिक उपादान है। समाज से ही व्यक्ति भाषा सीखता है और समाज में ही वह भाषा का उपयोग प्रयोग भी करता है। अतः समाज का प्रभाव भाषा चिन्तन पर पड़ता रहता है। समाज एक से अधिक व्यक्तियों के समूह का नाम है लेकिन क्या व्यक्तियों के सभी समूह को समाज कहा जा सकता है? इसमें भ्रम है। बिना किसी सामूहिक उद्देश्य के जब कहीं व्यक्तियों की भीड़ हो जाती है तो उसे समाज नहीं कहा जाता। समाज व्यक्तियों का वह समूह है, जिसमें कोई व्यवस्था होती है। हर समाज का कुछ उद्देश्य और आदर्श होता है, उस समाज के कुछ सिद्धान्त भी होते हैं, जिनके पालन करने से उस आदर्श या उद्देश्य की प्राप्ति संभव होती है। हिन्दी भाषा समुदाय अनेक संरचनाओं पर वर्गीकृत है, जिसमें वर्गीय आधार आर्थिक आधार, शिक्षा का आधार, व्यवसाय का आधार, क्षेत्रीय आधार, आयु का आधार आदि। किसी भी भाषा को बोलने वाला प्रयोक्ता जिस भाषा समुदाय का सदस्य होता है, उस समुदाय तथा समाज के निर्धारित नियमों का पालन करता है। अगर कोई क्षेत्रीय भाषा बोलता है, तो उसके भाषा व्यवहार की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशिष्टता उसमें स्थानीयता का तत्त्व होना है। वह शब्दों के प्रयोग में अपना परिवेश व उसका प्रभाव अवश्य अभिव्यक्त कर देता है जैसे नागार्जुन की कविताओं में मैथिली क्षेत्र के लोक शब्द- नाहक, असगुन, छिनाल, हिरनौटा, सरउ, केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में बुंदेलखण्ड क्षेत्र के लोक शब्द- मुरैठा, जोहना, फेंचकुर, मुसटी, लरेटी, बौड़म, त्रिलोचन की कविताओं में अवधी क्षेत्र के शब्द- गोहनलगुई, घरौवा, घरनी, चिरौरी, सहूर आदि मिलते हैं। इन देशी शब्दों के निर्माण का कोई न कोई आधार अवश्य है, बिना आधार के शब्दों का निर्माण नहीं हो सकता। शब्द का सीधा सम्बन्ध हमारे व्यवहार, आचरण और साहित्य सृजन व्यापार से है, शब्द के पीछे व्यक्ति और समाज का सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रतिनिधित्व होता है।

विषय सूची

1. समाज भाषाविज्ञान की अवधारणा 2. देशज शब्दावली विषयक अवधारणा और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता 3. नागार्जुन के काव्य में प्रयुक्त देशज शब्दों का समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन 4. केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रयुक्त देशज शब्दों का समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन 5. त्रिलोचन के काव्य में प्रयुक्त देशज शब्दों का समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

19. विश्वजीत कुमार
हिंदी साहित्य में स्वतंत्र विधा के रूप में रेखाचित्र का अध्ययन।
निर्देशक : डॉ. शिव कुमार शर्मा
Th 25621

सारांश
(असत्यापित)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध ‘हिन्दी साहित्य में स्वतंत्र विधा के रूप में रेखाचित्र का अध्ययन’ में ‘रेखाचित्र’ विधा के अध्ययन के माध्यम से ‘विधा’ के बहुआयामी परिप्रेक्ष्य को उद्घाटित करने का प्रयास रहा है। वस्तुतः साहित्य की सृजनात्मकता का फलक इतना विस्तृत है कि कोई भी इतिहासवेत्ता उपलब्ध सामग्री का समग्र समावेश नहीं कर पाया है। साथ ही, हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल का गद्य साहित्य प्रमुखता से कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना दृष्टि के विस्तृत मूल्यांकन तक ही सिमटा दिखाई पड़ता है। हिंदी की अन्य गद्य-विधाओं-रेखाचित्र, संस्मरण, यात्रा-वृतांत, रिपोर्ताज, आदि को न तो स्वतंत्र विधा के तौर पर पूर्णतः स्वीकृति मिली है और न ही वे पूर्णतः परिभाषित की गई है। इतिहास ग्रंथों में प्रमुख विधाओं की चर्चा कर, इन विधाओं को अन्य गद्य-विधा की श्रेणी में ‘खाना-पूर्ति रूप’ में समेट दिया जाता है। जबकि इन विधाओं का अपना पृथक अस्तित्व है। इनका स्वरूप, विषय-वस्तु व रचनातंत्र अलग-अलग हैं। जीवनीपरक कथेत्तर ये गद्य-विधाएँ अनेक नवीन गद्य विधाओं का पुंज है, जिनमें व्यक्ति विशेष का जीवन-चरित्र, जीवन-वृत्त से जुड़े विविध प्रसंग बुने हुए होते हैं। इन विधाओं का प्रत्येक शब्द मानवीय जिजीविषा, अनुभूति, चिंतन और कर्तव्य से संपृक्त रहता है। इन्हीं विधाओं में एक ‘रेखाचित्र’ का साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत शोध में, रेखाचित्र की समृद्ध परंपरा और साहित्यिक व सामाजिक महत्व को स्पष्ट करते हुए इसका स्वतंत्र विधा के रूप में अध्ययन किया गया है।

विषय सूची

1. हिंदी साहित्य की विधाएँ और रेखाचित्र 2. हिंदी साहित्य में रेखाचित्र की परंपरा 3. हिंदी के प्रमुख रेखााचित्रों का साहित्यिक एवं सामाजिक महतव के रूप में अध्ययन 4. हिंदी रेखाचित्र : शिल्पगत अध्ययन 5. विधा रूप में रेखाचित्र के प्रति दृष्टिकोण एवं संभावनाएँ । उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

20. संदीप कुमार
भारत विभाजन के संदर्भ में हिंदी और उर्दू से हिंदी में अनूदित उपन्यासों का अध्ययन।
निर्देशक : डॉ. संजीव कुमार
Th 25619

सारांश
(असत्यापित)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध ’भारत विभाजन के संदर्भ में हिंदी और उर्दू से हिंदी में अनूदित उपन्यासों का अध्ययन’ में हिंदी और उर्दू से हिंदी में अनूदित पाँच-पाँच उपन्यासों को लिया गया है। हिंदी के साथ उर्दू उपन्यासों का अध्ययन इसलिए किया गया कि विषय को व्यापक बनाने और अंशतः तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य की झलक दी जाए। हिंदी और उर्दू उपन्यासों के अध्ययन से यह बात साफ़ तौर पर निकलकर आती है कि विभाजन ने साहित्य में पस्ती, टूटन और निराशावादिता को जन्म दिया, जो उर्दू में लम्बे समय तक प्रकट होती रहीं। उसने साहित्य के लिए बहुआयामी और गंभीर विषय का काम किया, जिस पर हिंदी, उर्दू, पंजाबी, सिन्धी, बांग्ला और अंग्रेजी में आज भी रचनाएँ हो रही हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध में हिंदी के क्रमशः पाँच उपन्यासों ’झूठा सच’(यशपाल), ’आधा गाँव’ (राही मासूम रज़ा), ’तमस’ (भीष्म साहनी), ’ज़िन्दगीनामा’ (कृष्णा सोबती), ’कितने पाकिस्तान’

(कमलेश्वर) और उर्दू के पाँच उपन्यास और 'इंसान मर गया' (रामानंद सागर), 'आग का दरिया' (कुर्रतुल-ऐन-हैदर), 'आँगन' (खदीज़ा मस्तूर), 'उदास नस्लें' (अब्दुल्ला हुसैन), 'बस्ती' (इंतज़ार हुसैन) के उपन्यासों के माध्यम से बँटवारे के तात्कालिक और दूरगामी सामजिक-भावनात्मक-आर्थिक आदि प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है।

विषय सूची

1. देश विभाजन की घटना : ऐतिहासिक दस्तावेजों और इतिहास ग्रंथों के आलोक में 2. विभाजन साहित्य का एक सर्वेक्षण 3. विभाजन संबंधी हिंदी उपन्यास : वस्तु विधान 4. विभाजन संबंधी हिंदी उपन्यास : चरित्र और संबंधगत आयामों का अध्ययन 5. विभाजन संबंधी उर्दू उपन्यास : वस्तु विधान 6. विभाजन संबंधी उर्दू उपन्यास : चरित्र और संबंधगत आयामों का अध्ययन । उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

21. संध्या देवी
हिन्दी दलित महिला लेखन के बुनियादी सरोकार।
निर्देशक : डॉ. मुकेश कुमार
Th 25618

सारांश
(असत्यापित)

हिन्दी दलित लेखन और स्त्री लेखन के बावजूद दलित स्त्री लेखन की आवश्यकता क्यों महसूस हुई क्योंकि दलित स्त्री को सदैव पर्दे के पीछे रखा गया। क्योंकि दलित स्त्री के सवालों को स्थान नहीं मिला। लेखन और आंदोलन साथ-साथ चल रहा है। दलित महिलाओं ने लेखन में कविता, कहानी, उपन्यास के साथ ही आत्मकथात्मक अभिव्यक्ति और आलोचना में समाज और जीवन की सच्चाईयों, शोषण, प्रतिरोध और असमानता के खिलाफ संघर्ष का आह्वान किया। दलित महिलाओं ने अपने घर में अपने पितृसत्तात्मक शोषण और बाहर वर्णव्यवस्था के शोषण को चिन्हित किया और अपने लेखन में इसे अभिव्यक्ति प्रदान की। हिन्दी दलित साहित्य के बुनियादी सरोकार पहला जाति व्यवस्था एवं उससे जुड़े तमाम अमानवीय स्वरूपों का विरोध, दूसरा आर्थिक विषमता, श्रम के शोषण से मुक्ति, तीसरा जाति और वर्ग से इतर भेदभाव एवं शोषण का विरोध, चैथा अपने परंपरा और अपनी अस्मिता की तलाश और उसकी अभिव्यक्ति, पांचवां अपने यथार्थ के वृत्त का निर्माण खुद करने का आग्रह, छठा दलित स्त्री के स्व और स्वतंत्रता की तलाश का, सातवां दलित स्त्रियों की बराबर की भागीदारी, तमाम तरह के लैंगिक शोषण एवं भेदभाव से मुक्ति है। दलित स्त्री अपने बुनियादी सरोकारों को उठाते हुए अपने स्व, स्वतंत्रता, अस्मिता, अस्तित्व, संघर्ष आदि के सवाल अपने लेखन में उठाये हैं। दलित महिला लेखन में दलित स्त्री ने स्वतंत्र अभिव्यक्ति के माध्यम से अपने शोषण को उठाया है। अपने लेखन के द्वारा उन्होंने समाज में समानता लाने का प्रयास किया है। दलित महिलाएं लेखन के माध्यम से समाज के दृष्टिकोण परिवर्तन एवं पुरुष लेखकों को अपनी दृष्टिकोण परिवर्तन को बदलने के लिए प्रेरित किया है। दलित स्त्री लेखन का उद्देश्य है सभी व्यक्तियों को समानता, स्वतंत्रता, बंधुत्व प्राप्त हो जिससे एक नये समाज का निर्माण होगा जहाँ न कोई छोटा होगा न कोई बड़ा।

विषय सूची

1. हिन्दी दलित साहित्य की उत्पत्ति और विकास 2. हिन्दी दलित साहित्य में दलित महिला लेखन 3. हिन्दी दलित महिला लेखन के बुनियादी सरोकार 4. हिन्दी दलित महिला लेखन दलित महिला के बुनियादी सरोकार की अभिव्यक्ति। उपसंहार। परिशिष्ट। संदर्भ ग्रंथ सूची।

22. सतीश कुमार
हिन्दी नाटकों के रंग शिल्प का अध्ययन 1990 ई. से आज तक।
निर्देशक : प्रो. प्रेम सिंह
Th 25613

सारांश
(असत्यापित)

मेरे शोध का विषय - हिन्दी नाटकों के रंग शिल्प का अध्ययन 1990 ई. से आज तक है । प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैंने पांच अध्यायों में विभक्त किया है । किसी भी नाटक को मंच पर प्रस्तुत करने के लिए जिन विविध आयामों का सहारा लिया जाता है यथा मंच सज्जा , वेश भूषा, दृश्य बंध, रूप विन्यास, प्रकाश व्यवस्था और संगीत व्यवस्था आदि । इन सब के सम्मिलत प्रभाव के माध्यम से ही नाटक को मंच पर प्रस्तुत किया जाता है । नाटक को मंच तक ले जाने से पहले किसी भी नाट्य निर्देशक को रंगमंच के मूलभूत तत्वों से परिचित होना आवश्यक है 1990 ई. के बाद पूरे विश्व में तीव्र परिवर्तन दृष्टिगत होते है । आर्थिक उदारीकरण ,वैश्वीकरण भूमंडलीकरण, निजीकरण के माध्यम से पूरे देश में तकनीकी परिवर्तन के साथ साथ उत्तर आधुनिक विमर्शों के माध्यम से (दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श,विकलांग और किन्नर आदि विमर्शों) समाज में एक अलग तरीके का बदलाव दिखाई पढ़ा। स्वाभाविक है जब समाज में परिवर्तन आता है तो उस के निशान साहित्य में भी दिखाई पड़ने लगते है । इसीलिए तो साहित्य को समाज का दर्पण बोला जाता है ।नाटक में शिल्प के माध्यम से विमर्शों को सही रूप में प्रदर्शित किया जाता है । आधुनिक विमर्शों के कारण अब मंच पर बहुत ज्यादा मात्रा में प्रतीकों का इस्तेमाल किया जाता है । विंबो , प्रतीकों के माध्यम से ऐसा द्रश्यवंध बांधा जाता है जिस से दर्शक आसानी से उस भाव को समझ सके । अब मंच को पारसी रंगमंच की तरह सजाया नहीं जाता । बस कुछ कुर्सी मेज या फिर पत्थर रख कर मनुष्य की जड़ता , रूढ़ियां आदि को प्रदर्शित कर दिया जाता है ।

विषय सूची

1. रंग शिल्प का अर्थ एवं व्याख्याएँ 2. रंग शिल्प के विविध आयाम 3. 1990 ई. के बाद के प्रमुख नाटकों का रंग शिल्प 4. 1990 ई. के बाद के प्रमुख नाटकों का रंगभाषा 5. 1990 ई. स`अब तक मंचित 15 नाटकों की रंग-समीक्षा । उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

23. सिंह (गरिमा)
सत्ता एवं साहित्य का संबंध और रीतिकालीन दरबारी काव्य।
निर्देशक : डॉ. विनोद तिवारी
Th 25616

सारांश
(असत्यापित)

साहित्य प्रत्येक दौर में जनता के विचारों और भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम रहा है।सत्ता वर्ग अपने तमाम शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों से इस प्रातिनिधिक चेतना का अपने पक्ष में दुरुपयोग करती है और साहित्यकार की विषम आर्थिक परिस्थिति का फायदा उठाकर उसे अपने अनुकूल साहित्य-सृजन के लिए बाध्य करती है।यहाँ दरबारी काव्य एक विशेष मनोवृत्ति या दृष्टिकोण का सूचक है जो कि देश-काल निरपेक्ष है| चूँकि सत्ता के साथ साहित्य के गठजोड़ से मौलिक सर्जना का विकास अपेक्षाकृत धीमा और क्षीण होता है लेकिन एकदम से अवरुद्ध नहीं होता; रीतिमुक्त कवियों का काव्य इसका प्रमाण है।सर्वप्रथम रीतिकालीन सामंती ढाँचे के अन्तर्गत् निर्मित होने वाले आस्वाद / मनोरंजन की विस्तृत चर्चा की गई है जिसमें अभिजात्यता और विलासी मानसिकता पर बल दिया गया है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि तत्कालीन अभिरूचि इन्हीं के इर्द-गिर्द अपने मनोरंजन का साज संभार जुटाती है। साथ ही तत्कालीन साहित्य के दरबारी काव्य होने के कारण उस पर कवि की आर्थिक परनिर्भरता भी थी जिससे वह 'लोक' से दूर तथा 'शास्त्र' के अत्यधिक निकट पहुँच गया था ऐसे में उसे अपनी मौलिकता से भी समझौता करना पड़ा और कविता मनोरंजन तथा कवि शिक्षा की माध्यम बन गई। तत्कालीन सामंतवादी परिवेश में स्त्री विभिन्न साम्राज्यवादी ताकतों तथा विभिन्न सत्ताओं द्वारा नियंत्रित एवं नियमित थी। उसके संपूर्ण व्यक्तितत्व को नकार कर उसे 'देह तक सीमित कर 'पवित्र बनाम अश्लील'के खाँचे में बाँट दिया गया था। तत्कालीन समय में कामशास्त्रीय परंपरा के अन्तर्गत् उसके'रूढ़छवि'को फैशन बाज़ार के मानक के रूप में पुन: निर्मित किया गया जिसके कारण उसका न केवल वस्तुत्वांतरण हुआ बल्कि वह 'नायिका' के रूप में पुरुषों के उपयोग की सामग्री भी बना दी गई। कहा जा सकता है कि यह सब कुछ तत्कालीन पितृसत्तात्मक समाज, दरबारी परिवेश और पुरुषवादी नजरिये के अनुरूप ही था।

विषय सूची

1. सत्ता एवं साहित्य : अवधारणा और संबंध 2. दरबारी काव्य की अवधारणा और रीतिकालीन दरबारी काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 3. रीतिकालीन दरबारी का स्वरूप 4. रीतिकालीन काव्य में सत्ता एवं साहित्य के विविध रूप 5. कामशास्त्रीय परंपरा, रीतिकाव्य और स्त्री–यौनिकता के सवाल। उपसंहार। पुस्तक सूची।

24 सिंह (चारु)
19वीं सदी के हिन्दी लोकवृत्त में स्त्री शिक्षा की अवधारणा (1850–1900)।
निर्देशक : प्रो. अपूर्वानंद
<u>Th 25612</u>

विषय सूची

1. उन्नीसवीं सदी का हिन्दी लोकवृत्त 2. भारतीय तथा पाश्चात्य परम्पराओं के संदर्भ में स्त्री–शिक्षा विमर्श 3. उन्नीसवीं सदी के हिन्दी लोकवृत्त में स्त्री–शिक्षा की अवधारणाएँ 4. प्रतिलोकवृत्त के रूप में स्त्रियाँ 5. स्त्रियों का अंतरंग क्षेत्र और बुढ़िया बखान की अवधारणा । उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

25. सिंह (प्रियंका)
राधाकाव्य की परंपरा और आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की राधा।
निर्देशक : डॉ. वीरेन्द्र भारद्वाज
Th 25256

सारांश
(असत्यापित)

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के पहले अध्याय 'राधाकाव्य और उसकी परंपरा' की मूल प्रकृति सैद्धांतिक और ऐतिहासिक है। इस अध्याय के अंतर्गत हमारे लिए आकर्षण का मुख्य बिंदु रहा है 'राधा-तत्त्व' जिसका सैद्धांतिक और ऐतिहासिक विवेचन करने का प्रयास किया गया है। शोध-प्रबंध के दूसरे अध्याय 'राधाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में जानकीवल्लभ शास्त्री के काव्य का अध्ययन' के आरंभ में 'काव्य' और 'काव्य-चेतना' की सामान्य समझ को लेकर एक मौलिक प्रश्न उठाया गया है। हमने शास्त्री जी की प्रेरणा के संदर्भ में अपने विवेचन को 'संस्कृत' के साथ-साथ 'संगीत' के एक संतुलित और तर्कसंगत निष्कर्ष की ओर पहुँचाने का प्रयास किया है। तीसरा अध्याय ''राधा' महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन' है जिसमें 'राधा' महाकाव्य का सामान्य परिचय देते हुए उसकी रचना-प्रक्रिया का विश्लेषण किया गया है और उसके बाद 'राधा' महाकाव्य का कथानक संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य की कसौटी पर 'राधा' का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। रस, छंद-योजना, उदात्त शैली तथा अन्य शास्त्रीय विशेषताओं के आधार पर भी टिप्पणी की गई है। चौथा अध्याय ''राधा' महाकाव्य के अभिव्यंजना-सौष्ठव' है। सबसे पहले 'राधा' की काव्य-भाषा की मूलभूत विशेषताओं पर ध्यान दिलाते हुए 'राधा' में प्रस्तावित भाषा संबंधी दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है। काव्य-भाषा के दो रूपों की चर्चा भी की गई है। यह अध्याय एक तरह से पाठपरक शोध या आलोचना का उदाहरण है जिसमें उद्धरणों के माध्यम से शब्द-चयन, पद-योजना, कवित्व, गीतात्मकता, संगीत, नाद-सौन्दर्य और कुछ साहित्यशास्त्रीय विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। शोध-प्रबंध का पाँचवां अध्याय ''राधा' महाकाव्य का पुनर्मूल्यांकन' है। पुनर्मूल्यांकन की इस पद्धति में क्रमशः हमने 'राधा' के प्रमुख आलोचकों का वर्गीकरण और उनके मतों का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। इस प्रकार 'राधा' जैसे महत्त्वपूर्ण काव्य के परवर्ती पुनर्मूल्यांकन की संभावनाओं पर विचार प्रस्तुत किया है। अंततः उपसंहार से शोध-प्रबंध का समापन किया है।

विषय सूची

1. राधाकाव्य और उसकी परंपरा 2. राधाकाव्य के परिप्रेक्ष्य में जानकीवल्लभ शास्त्री के काव्य का अध्ययन 3. राधा महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन 4. राधा महाकाव्य का अभिव्यंजना-सौष्ठव 5. राधा महाकाव्य का पुनर्मूल्यांकन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

26. सुधांशु कुमार
नवजागरण और स्त्री प्रश्न (विशेष संदर्भः 1850 से 1900 तक का हिंदी साहित्य)।
निर्देशिका : डॉ. अल्पना मिश्र
Th 25258

सारांश
(असत्यापित)

मेरे पीएच.डी. के इस विषय का जुड़ाव एम.फिल में किए गए शोध कार्य से है। एम.फिल में 'उत्तरमध्यकाल: स्त्री रचनाकार- समय और समाज' विषय पर लघु-शोध-प्रबंध लिखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उत्तरमध्यकाल के दौरान स्त्रियाँ, साहित्य में ही सही, 'देवी के ईश्वरीय धरातल' से उतरकर सामान्य नायिका, दूती की तरह प्रेम का इजहार कर रही थीं। साहित्य में अब स्त्री का दैवीय स्वरूप टूट रहा था। स्त्री देवी नहीं सामान्य नायिका बन रही थी। चूँकि साहित्य समाज को दूर तक प्रभावित करता है इसलिए मैं इसे एक सकारात्मक बदलाव की तरह देखता हूँ। इसी अध्ययन के साथ यह तथ्य सामने आया कि उन्नीसवीं सदी के जागरण के स्त्री-सुधार के दौरान एक बार फिर से स्त्री को देवी बनाकर घरों में कैद करने की कवायद शुरू हुई। साहित्य में उत्तरमध्यकालीन 'नायक-नायिका' के विमर्श की जगह जागरणकालीन 'आदर्श गृहिणी' के विमर्श ने लेना शुरू किया। उन्नीसवीं सदी में एक बार फिर स्त्री के लिए कुललक्ष्मी, गृहलक्ष्मी जैसे शब्दों के प्रयोग का चलन बढ़ गया। इसके लिए योजनाबद्ध तरीके से सर्वप्रथम संपूर्ण उत्तरमध्यकालीन साहित्य को खारिज किया गया। बकायदा रीति-विरोधी आंदोलन चलाए गए। इन्हीं चिंताओं और जिज्ञासाओं के साथ मैंने पीएच.डी. के लिए 'नवजागरण और स्त्री प्रश्न (विशेष संदर्भ : 1850 से 1900 तक का हिंदी साहित्य)' विषय का चुनाव किया। अपने इस शोध में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि स्त्री-प्रश्न, स्त्री-सुधार की जो स्थिति राष्ट्रवाद के तिलक और मालवीय युग में थी, वही स्थिति गाँधी-नहेरू युग में नहीं थी। पार्थ चटर्जी की यह स्थापना कि राष्ट्रवाद के विकास के साथ-साथ 'आंतरिक हलका' मजबूत होता गया और स्त्री-प्रश्न को आंतरिक हलके में धकेल दिया गया; यह 'तिलक-मालवीय युग' के लिए जितना सही है उतना गाँधी-नेहरू युग के लिए नहीं। हम पाते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन के चरमकाल में 'आंतरिक हलका' कुछ कमजोर होता दिखाई पड़ता है।

विषय सूची

1. जागरण की अवधारणा और उसके विविध पक्ष 2. भारतीय नवजागरण की अवधारणा 3. राष्ट्रमुक्ति और स्त्री मुक्ति का अंतःसंबंध 4. नवजागरणकालीन स्त्री रचनाकारों की रचनात्मकता के विविध आयाम 5. नवजागरणकालीन स्त्री प्रश्न और रचनात्मक रणनीतियाँ। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। चित्र–सूची संदर्भ।

27. सुमित कुमार
नरेन्द्र शर्मा के काव्य का शास्त्रीय और स्वच्छंदतावादी दृष्टि से अध्ययन ।
निर्देशिका : डॉ. संध्या गर्ग
Th 25255

सारांश
(असत्यापित)

हिंदी साहित्येतिहास के अंतर्गत उत्तरछायावादी काव्य को वह श्रेय नहीं मिल पाया, जितना कि उसे मिलना चाहिए था। इस काव्यगत प्रवृत्ति की मूल विशेषताओं में हालांकि छायावादी काव्य की ही तरह प्रकृति चित्रण और प्रेम का निरूपण करना रहा है, किन्तु उसका स्वरूप छायावादी कवियों की कविताओं में अभिव्यक्त भाव-संप्रेषण से इतर रहा है। जहाँ कि छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में प्रकृति एवं मानव-जीवन के काल्पनिक प्रेम को उकेरा है, वहीं उत्तरछायावादी कवियों ने उसके यथार्थ स्वरूप का अंकन करना ही उचित माना है। जबकि

स्वाधीनता आन्दोलन अपनी चरम स्थिति पर था, हमारे छायावादी कवि एकाध जगहों को छोड़कर लगभग सर्वत्र अपनी कृतियों के द्वारा कल्पना भरे गीत ही साहित्य में अंकित कर रहे थे; ऐसी ही स्थिति में उत्तरछायावादी कविता धीरे-धीरे अन्य-अनेक रूपों में जन्म ले रही थी, जिसके आधार-स्तम्भ के रूप में हम सुभद्रा कुमारी चौहान, माखन लाल चतुर्वेदी, रामधारी सिंह दिनकर एवं हरिवंशराय बच्चन जी को ले सकते हैं । आगे चलकर इस काव्यधारा को और अधिक समृद्धि प्रदान करने का कार्य रामनरेश त्रिपाठी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, रामेश्वर शुक्ल अंचल और नरेन्द्र शर्मा जैसे कवियों ने किया । कवि नरेन्द्र का आरंभिक काव्य-जीवन छायावादी या फिर कह लीजिए कि स्वच्छंदतावादी कवि सुमित्रानंदन पंत के संसर्ग में रहने के कारण उनकी प्रारभिक रचनाओं में जहां कि स्वच्छंदतावादी भाव अधिक मुखर हुआ है, वहीं बाद की रचनाओं में सामाजिक परिदृश्य बदलने के कारण उनके काव्य में शास्त्रीयता स्वयंमेव ही समाहित होने लगी, इसका एक बड़ा कारण उनके पारिवारिक संस्कार को भी माना जा सकता है । प्रारंभ की रचनाओं में तो कम, किन्तु उनके बाद की रचनाओं में आध्यात्मिकता का प्रभाव प्रचुरता में लक्षित होता है जो उनके शास्त्रीयता की द्योतक प्रतीत होती है ।

विषय सूची

1. शास्त्रवाद : स्वरूप एवं विकास 2. स्वछंदतावाद : स्वरूप एवं विकास 3. नरेन्द्र शर्मा के काव्य का शास्त्रीय स्वरूप नरेन्द्र शर्मा के काव्य का स्वच्छंदतावादी स्वरूप 5. नरेन्द्र शर्मा की कविताओं का काव्य–शिल्प। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची।

28. हवासिंह

संत पीपा का काव्य : पाठालोचन और मूल्यांकन ।

निर्देशक : डॉ. आशुतोष कुमार

Th 25259

सारांश
(सत्यापित)

संत पीपा की भक्ति में गहरी निष्ठा है इसके लिए उन्होंने राजपाट को त्याग दिया और सदाचार से साधारण जीवन यापन किया है। संत पीपा परम ब्रह्म को एकेश्वर कहते हैं। उसके प्रति एकनिष्ठ विश्वास व्यक्त करते हैं। सत्य के स्वरूप में परमात्मा की परिकल्पना करते हैं। संत पीपा की वाणी में संकीर्ण सोच के लिए स्थान नहीं है। उन्होंने तो निज और पर से ऊपर उठ कर चिंतन किया है। पीपा भक्ति के माध्यम से समाज में फैली असमानताओं को मिटाना चाहते हैं। पीपा भक्ति के माध्यम से समाज में समानता, भाईचारा और प्रेम मूल्यों को स्थापित करना चाहते हैं। पीपा वाणी में समाज में फैली नफरत आडम्बर और कट्टरपंथी मानसिकता को चुनौती देते हैं। पीपा का एक ही लक्ष्य है, मानवता की सेवा करना। पीपा की वाणी में जाति, वर्ग, धर्म और सम्प्रदाय आदि गौण है इन्हें अस्वीकार किया गया है। पीपा का चिंतन पर पीड़ा और परहित में रहता है। संत पीपा ने भक्ति में अहंकार का त्याग किया है। पीपा ने सभी भक्तों को उदारता से देखा है और समान माना है। पीपा की वाणी में लोभ, लालच, पक्षपात और परनारी को अस्वीकार किया गया है। पीपा की वाणी की मूल पांडुलिपि कहीं उपलब्ध नहीं है। उनकी वाणी का संकलन समय समय पर किया जाता रहा है, लेकिन ये संकलन भी प्रामाणिक नहीं है। इस बात की जरूरत बनी हुई थी कि जो भी संकलन उपलब्ध हैं, और उनकी जो वाणी मौखिक रूप से gaaई जाती हैं, उन सब को एकत्रित कर मूल पाठ के निकट पहुंचने की कोशिश की जाए। प्रस्तुत पाठालोचन इसी उद्देश्य से किया गया है। पाठांतरों की समीक्षा मुख्य रूप से भाषिक , ऐतिहासिक और काव्य संगति के तर्क से की गई है!

विषय सूची

1. हिंदी पाठालोचन की परंपरा का विकास 2. संत पीपा के काव्य का विभिन्न स्त्रोत से संकलन 3. संत पीपा के काव्य का पाठालोचन 4. संत पीपा के काव्य में भक्ति और प्रेम 5. संत पीपा के काव्य का आलोचनात्मक मूल्यांकन। उपसंहार। संदर्भ ग्रंथ सूची। परिशिष्ट।